सूफीमत

इस्लामी इतिहास में दसवीं शताब्दी का अनेक कारणों से महत्व है। इसी समय अब्बासी खिलाफत के अवशेषों से तुर्कों का उदय हुआ तथा दर्शन और विश्वासों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। दर्शन के क्षेत्र में इस समय मुताजिल, अथवा तर्क बुद्धिवाला दर्शन का आधिपत्य समाप्त हुआ और रूढ़िवादी विचारधारा का जन्म हुआ जो कुरान और इदीस (हजरत मुहम्मद और उनके सहयोगियों की परम्परा) पर आधारित थी। इसी समय सूफी रहस्यवाद का जन्म हुआ। तर्क बुद्धिवादियों पर संशयवाद और नास्तिकता फैलाने का आरोप लगाया गया। विशेष रूप से तर्क दिया गया कि अद्वैतवादी दर्शन, जो ईश्वर और उसकी सृष्टि के मूल रूप से एक होने की बात करता है, इसलिए धर्मद्रोही है क्योंकि इससे सृष्टा और सृष्टि के मध्य का भेद समाप्त हो जाता है।

'अबू नसर अल सराज' की पुस्तक 'किताब अल लुमा' में किये गये उल्लेख के आधार पर माना जाता है कि 'सूफी शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द सूफ (ऊन) से हुई जो एक प्रकार से ऊनी वस्त्र का सूचक है, जिसे प्रारम्भिक सूफी लोग पहना करते थे। आचार व्यवहार से पवित्र लोग सूफी कहलाये। सफा से सूफी की उत्पत्ति मानी जाती है। सफा का अर्थ पवित्रता या विशुद्धता। एक अन्य मत के अनुसार हजरत मुहम्द साहब द्वारा मदीना में निर्मित मस्जिद के बाहर सफा अर्थात् मक्का की एक पहाड़ी पर कुछ लोगों ने शरण लेकर अपने को खुदा की आराधना में लीन कर दिया, इसलिए सूफी कहलाये। सूफी चिन्तक इस्लाम का अनुसरण करते थे। परन्तु वे कर्मकाण्ड का विरोध करते थे। इनके प्रादुर्भाव का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि उस समय (सल्तनतकाल) उलेमा (धर्मवेत्ता) वर्ग में लोगों के कट्टरपंथी दृष्टिकोण की प्रधानता थी। सल्तनतकालीन सुल्तान सुन्नी मुसलमान होने के कारण सुन्नी धर्मवेत्ताओं के आदेशों का पालन करते थे। और साथ ही शिया सम्प्रदाय के लोगों को महत्व नहीं देते थे। सूफियों ने इनकी प्रधानता को चुनौती दी तथा उलेमाओं के महत्व को नकारा।

इनमें से अधिकांश ऐसे थे जो महान भक्त थे और समृद्धि के भोंडे प्रदर्शन और इस्लामी साम्राज्य की स्थापना के बाद उत्पन्न नैतिक पतन के कारण दुखी थे। अतः इन सूफियों को राज्य से कोई सरोकार नहीं था। बाद में भी उनमें यह परम्परा जारी रही। महिला रहस्यवादी रबिया (मृत्यु आठवीं शताब्दी) जैसे मन्सूर-बिन्-हलाज (मृत्यु दसवीं शताब्दी) जैसे प्रारम्भिक सूफियों ने ईश्वर और व्यक्ति के बीच प्रेम सम्बन्ध पर बहुत बल दिया।

प्रारम्भिक सूफियों में रबिया एवं मंसूर बिन हलाज (10वीं सदी) का नाम महत्वपूर्ण है। मंसूर हलाज ऐसे पहले सूफी साधक थे जो स्वयं को 'अनलहक' घोषित कर सूफी विचारधारा के प्रतीक बने। सूफी संसार में सबसे पहले इब्नुल अरबी द्वारा दिये गये सिद्धान्त बहादत-उल-वुजूद का उलेमाओं ने जमकर विरोध किया। उलेमा वर्ग के लोगों ने ब्रह्म तथा जीव के मध्य मालिक एवं गुलाम के रिश्ते की कल्पना की, दूसरी ओर सूफियों ने ईश्वर को अदृश्य सम्पूर्ण वास्तविकता और शाश्वत सौंदर्य के रूप में माना। सूफी सन्त ईश्वर को 'प्रियतम' एवं स्वयं को प्रियतमा मानते थे। उनका विश्वास था कि ईश्वर की प्राप्ति प्रेम-संगीत से की जा सकती है। अतः सूफी गुरू को अधिक महत्व देते थे क्योंकि वे गुरू को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग का पथ प्रदर्शक मानते थे। सूफी सन्त भौतिक एवं भोग विलास से युक्त जीवन से दूर सरल, संयमपूर्ण जीवन में आस्था रखते थे। प्रारम्भ में सूफी आन्दोलन खुरासान प्रांत के आस-पास विशेषकर बल्ख शहर एवं इराक तथा मिश्र में केन्द्रित रहा। भारत में इस आंदोलन का आरम्भ दिल्ली सल्तनत से पूर्व ही हो चुका था। ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में लाहौर एवं मुल्तान में कई सूफी संतों का जमघट हुआ। मुस्लिम स्रोत के आधार पर करीब 175 सूफी धर्मसंघ के अस्तित्व की बात कही जाती है। अबुल फजल ने 'आइने-अकबरी' में करीब 14 सूफी सिलसिलों के बारे में उल्लेख किया है। इनमें से केवल दो सिलसिलों का ही गहरा प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ा। जो लोग सूफी संतों से शिष्यता ग्रहण करते थे उन्हें 'मुरी' कहा जाता था। सूफी जिन आश्रमों में निवास करते थे, उन्हें 'खरकाह' व

Scanned with CamScanner

'मठ' कहा जाता था।

अल-ग़ज़ाली (मृत्यु 1127) ने जिसे परम्परावादी तत्व और सूफी दोनों ही सम्मान की दृष्टि से देखते थे, रहस्यवाद और इस्लामी परम्परावाद के बीच मेल कराने का प्रयत्न किया। इसमें वह काफी सफल हुआ। उसने यह कहकर कि ईश्वर और उसके गुणों का ज्ञान तर्क से न होकर आत्मज्ञान से ही हो सकता है, तर्कबुद्धि दर्शन को एक और धक्का पहुंचाया। इस प्रकार, वैसी पुस्तक कुरान रहस्यवादियों के लिए महत्वपूर्ण रही।

इसी समय के आसपास सूफी 12 वर्गों अथवा सिलसिलों में विभाजित थे, प्रत्येक 'सिलसिला' का एक नेता होता जो प्रमुख रहस्यवादी होता था और अपने शिष्यों के साथ 'खानकाह' अर्थात् आश्रम में रहता था। सूफी विचारधारा में गुरू (पीर) और शिष्य (मुरीद) के बीच सम्बन्ध का महत्व बहुत अधिक था। प्रत्येक पीर अपना उत्तराधिकारी (बलि) नियुक्त करता था, जो उसके बाद काम को आगे बढाता था।

एक सूफी को परमपद प्राप्त करने से पूर्व की अवस्थाओं-तौबा (पश्चाताप) बजा (संयम), तवाकुल (प्रतिज्ञा), जुहद् (भक्ति), फग्र (निर्धनता), सब (संतोष), रिजा (आत्मसमर्पण), शुक्र (आभार), खौफ (डर), रजा (उम्मीद), आदि से गुजरना पड़ता था। सूफी सन्तों ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार जन साधारण की भाषा में किया। इनके प्रयत्नों से हिन्दी, उर्दू के साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओं का भी विकास हुआ।

सूफीमत पर हिन्दू प्रभाव का विश्लेषण

आत्मा के बारे में सूफी सिद्धान्त पतंजलि के 'योग सूत्र' के सिद्धान्तों की ही भांति है। योग सूत्र की भांति ही सूफी रचनाओं में भी यह विचार अभिव्यक्त किया गया कि 'प्रतिदान प्राप्त करने के उद्देश्य से शरीर आत्मा का ही मूर्त रूप होता है।'

तेरहवीं शताब्दी तक भारतीय सूफियों का सामना कनफटै (खण्डित कर्ण वाले) योगियों अथवा गोरखनाथ के नाथ अनुयायियों से हुआ। शेख निजामुद्दीन औलिया की योगियों के साथ बातचीत के विवरण से स्पष्ट होता है कि वह उनके इस सिद्धान्त से भी प्रभावित थे कि मानव शरीर शिव तथा शक्ति के रूप में विभक्त होता है। इस आधार पर सिर से नाभि तक का भाग, जो शिव से संबंध होता है, आध्यात्मिक होता है। शेख निजामुद्दीन औलिया योग के

Scanned with CamScanner